

श्री सुभाष चंद्र वर्मा एवं अन्य आदि

बनाम

बिहार राज्य एवं अन्य आदि

13 दिसंबर 1994

[ए. एम. अहमदी, मुख्य न्यायाधीश और एस. मोहन, न्यायमूर्ति]

सेवा कानून: चिकित्सा पदाधिकारियों (आयुर्वेद) के पद पर चयन-भर्ती - आरोप कि परीक्षा से पहले प्रश्न पत्र लीक हो गए थे और बाजार में बिक रहे थे - परीक्षा विभाग के लिपिकिय कर्मचारी द्वारा उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन सहित अनियमितताओं का भी आरोप लगाया गया, जिन्हें परीक्षा के विषय का कोई ज्ञान नहीं था - क्या चयन रद्द माना जाएगा - फैसला: नहीं।

बिहार लोक सेवा आयोग (बीपीएससी) ने 15.9.1989 को चिकित्सा पदाधिकारियों (आयुर्वेद) के 56 पदों को भरने के लिए विज्ञापन जारी किया, जो बाद में बढ़कर 195 पद हो गए।

प्रारंभिक परीक्षा 10.1.1993 को आयोजित की गई। इस परीक्षा में लगभग 3,000 उम्मीदवार शामिल हुए। इस परीक्षा में 410 उम्मीदवार सफल घोषित किए गए, जिनमें अपीलकर्ता भी शामिल थे।

कुछ उम्मीदवार जो न्यूनतम अंक नहीं ला पाए और प्रारंभिक परीक्षा में सफल घोषित नहीं हो पाए, उन्होंने कई आधारों पर बीपीएससी द्वारा आयोजित प्रारंभिक परीक्षा को रद्द करने की मांग करते हुए रिट याचिकाएं दायर कीं। जिन मुख्य आधारों पर प्रारंभिक परीक्षा को चुनौती दी गई, वे थे (i) प्रश्न पत्र लीक हो गए थे और परीक्षा से पहले ही वे बिकने लगे थे, (ii) वस्तुनिष्ठ प्रकार परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन बीपीएससी के परिसर में ऐसे कर्मचारी सदस्यों द्वारा किया गया जिन्हें विषय का कोई ज्ञान नहीं था, (iii) बीपीएससी के अध्यक्ष ने परीक्षा आयोजित करने में मनमानी की और आखिर में (iv) प्रारंभिक परीक्षा में पूछे गए प्रश्न अस्पष्ट थे और उनके एक से ज्यादा उत्तर थे।

इसके साथ ही, 10.1.1993 को आयोजित प्रारंभिक परीक्षा के सफल उम्मीदवारों को मौखिक परीक्षा के लिए बुलाया गया, जो चार समितियों द्वारा आयोजित किया गया। प्रत्येक

समिति में दो बीपीएससी सदस्य और एक विशेषज्ञ शामिल थे, जिसे या तो बीपीएससी या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था।

कुछ और उम्मीदवारों ने भी, जो प्रारंभिक परीक्षा में फेल हो गए थे, उसी आधार पर रिट याचिका दायर की, जिस आधार पर पहले वाली रिट याचिका में दलीलें दी गई थीं, ताकि प्रारंभिक परीक्षा को रद्द किया जा सके। अपीलकर्ता ने इन दोनों याचिकाओं में दखल दिया। एक ही फैसले से दोनों रिट याचिकाएं मंजूर कर ली गईं। प्रारंभिक परीक्षा को मुख्य रूप से इन आधारों पर रद्द किया गया: (i) बीपीएससी द्वारा मौखिक परीक्षा की सभी तारीखों पर मौखिक परीक्षा के दौरान विशेषज्ञ मौजूद नहीं थे, (ii) प्रारंभिक परीक्षा में सवालों के एक से ज्यादा संभावित जवाब थे और (iii) बीपीएससी ने *मौखिक परीक्षा* के लिए 50% तय किया था जो इस न्यायालय के फैसलों के खिलाफ था। परीक्षा के नतीजों को रद्द करने के बाद, उच्च न्यायालय ने बीपीएससी को उस पद के लिए नए सिरे से विज्ञापन देने और चयन करने का निर्देश दिया। इससे नाराज़ होकर, अपीलकर्ताओं ने ये अपीलें दायर की हैं।

अपील की अनुमति देते हुए और चयन को बरकरार रखते हुए, इस न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: एक लोकतांत्रिक व्यवस्था तभी ठीक प्रकार से संचालित की जा सकती है जब लोक सेवकों की नियुक्ति केवल योग्यता के आधार पर और खुली प्रतियोगिता के माध्यम से की जाए। इसके अतिरिक्त, यह आवश्यक है कि वे प्रशासन को स्वतंत्र रूप से संचालित करें और केवल राजनीतिक अधिकारियों के आदेशों का अंधाधुंध पालन न करें। योग्यता के आधार पर भर्ती के लिए, संविधान ने केंद्रीय और राज्य दोनों स्तरों के लिए लोक सेवा आयोग का प्रावधान किया है। इन आयोगों को स्वायत्त बनाया गया है ताकि उनके कार्य स्वतंत्रतापूर्वक, निष्पक्षतापूर्वक तथा पक्षपातरहित रूप से संपन्न हो सकें।

[516 ई से एफ]

अशोक कुमार यादव और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, [1985] 4

एसएससी 412, का संदर्भ दिया गया।

2. सेवा आयोग ने अपने जवाब में बताया कि 10.1.1993 को आयोजित परीक्षा के प्रश्नपत्र परीक्षा शुरू होने से पहले लीक नहीं हुए थे। प्रश्नपत्र सिल बंद पैकेट में ज़ोनल अधिकारियों को सुपुर्द किए गए थे ताकि उन्हें पर्यवेक्षक को वितरित किया जा सके, और किसी भी परीक्षा केंद्र ने सिल बंद पैकेट में किसी भी तरह के छेड़छाड़ की सूचना नहीं दी।

[520 ई]

3.1. उत्तर पुस्तिकाएँ आसानी से उपलब्ध होने का आरोप पहली रिट याचिका के दायर होने (12.3.1993) पर नहीं लगाया गया था। याचिकाकर्तागण का कथन है कि उक्त प्रश्नपत्रों के लीक होने के संबंध में दिनांक 11.01.1993 को डाक प्रमाण पत्र के माध्यम से एक प्रतिवेदन प्रेषित किया गया था। आयोग का स्पष्ट उत्तर यह है कि ऐसी कोई सूचना कभी प्राप्त नहीं हुई। यदि वास्तव में भेजी गई होती, तो यह सेवा आयोग के कार्यालय में प्राप्त हो जाती। यह समझ से परे है कि यदि याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवेदन भेजी भी, तो उन्होंने इसे डाक प्रमाण पत्र के माध्यम से क्यों भेजा। यदि वास्तव में ऐसी प्रस्तुति दी गई होती, तो इसे सीधे सेवा आयोग के काउंटर पर जमा करना और मुद्रित रसीद लेना सबसे आसान काम होता। अतः इसका कोई प्रमाणिक मूल्य नहीं है, क्योंकि उस समय तक उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन पूरा हो चुका था। लघु सूचीकरण से संबंधित परिणाम दिनांक 24.02.1993 को प्रकाशित किए गए थे। अतः परिणामों के प्रकाशन के बाद उत्तर पुस्तिकाओं का प्रस्तुत करना साक्ष्य के रूप में उपयोगी नहीं होगा। यही स्थिति 15.3.1993 की प्रेस प्रतिवेदन की है। उच्च न्यायालय ने इन पहलुओं की सही सराहना नहीं की। [520 जी, 521 बी से सी]

3.2. आयोग का रुख यह है कि प्रारंभिक परीक्षा वस्तुनिष्ठ प्रकार का था, और मूल्यांकन करने वाले कर्मचारियों को केवल पेपर सेट करने वालों द्वारा दिए गए की-उत्तर के आधार पर अंक देने थे। मूल्यांकन कर्मचारियों को विषय का ज्ञान होना आवश्यक नहीं था। अतः मूल्यांकन कर्मचारियों की विषय संबंधी जानकारी की कमी उम्मीदवारों के मामले को प्रभावित नहीं करती। यदि की-उत्तर मूल्यांकनकर्ताओं को उपलब्ध कराए गए थे, तो उत्तर पुस्तिकाओं को बाहरी मूल्यांकन के लिए भेजने की आवश्यकता नहीं थी। यह भी ध्यान देने

योग्य है कि किसी उम्मीदवार को कोई नुकसान नहीं हुआ, क्योंकि नकारात्मक अंकन नहीं थी।[521 ई से एफ]

3.3. पूरा आयोग ने 15.1.1993 की संकल्पना के अनुसार निर्णय लिया कि इस प्रकार की वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं में, यदि संभव हो तो उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन ऑप्टिकल मार्क्स रीडर कंप्यूटर [जो वस्तुनिष्ठ उत्तर पुस्तिकाओं की जांच करता है] द्वारा किया जाता है। इसमें सही उत्तर की जानकारी की-उत्तर पत्र से दर्ज की जाती है और उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन उसी के अनुसार होता है। इस मामले में चूंकि कोई कंप्यूटर उपलब्ध नहीं था, आयोग ने निर्णय लिया कि उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन पेपर सेट करने वाले द्वारा दिए गए की-उत्तर के आधार पर वरिष्ठ सहायक कर्मचारियों की मदद से किया जाएगा, जिसके लिए विषय का ज्ञान आवश्यक नहीं था। अतः उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष कि मूल्यांकन प्रभावित हुआ, उचित नहीं है।[521 जी से एच, 522 ए]

4. वस्तुनिष्ठ प्रकार की परीक्षा में, एक से अधिक उत्तर दिए जा सकते हैं। उम्मीदवारों को उन उत्तरों में से वह सही उत्तर चुनना होता है जो अधिक उपयुक्त हो। प्रश्न और उत्तर क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा मानक पुस्तकों के संदर्भ में तैयार किए गए थे। इसलिए यह कहना गलत है कि किसी प्रश्न के अधिक से अधिक सही उत्तर होंगे। भले ही उत्तर एक से अधिक हो सकते हों, उम्मीदवारों को वैकल्पिक उत्तरों में से वह उत्तर चुनना होगा जो अधिक उपयुक्त हो। किसी भी स्थिति में, यह कठिनाई सभी उम्मीदवारों को महसूस हुई।

5. उच्च न्यायालय को चाहिए था कि वह एक विशेषज्ञ निकाय नियुक्त करे और प्रश्नों की भ्रमपूर्ण या विवादास्पद प्रकृति के बारे में उसकी राय प्राप्त करे। किसी कारणवश ऐसा नहीं किया गया। इसने केवल याचिकाकर्ताओं का प्रस्तुतिकृत संस्करण स्वीकार किया। इस बात का कारण कि इस न्यायालय ने बार-बार यह कहा है कि ऐसे मामलों को विशेषज्ञ निकाय के पास भेजकर उसकी राय ली जानी चाहिए, यह है कि शैक्षणिक मामलों में, जैसे कि यह मामला है, न्यायालय के पास आवश्यक विशेषज्ञता नहीं होती।

कानपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य बनाम समीर गुप्ता एवं अन्य, [1984] 1 एससीआर 73, को भिन्न माना गया।

डॉ. शंतनु सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर (1993) इलाहाबाद 85, का संदर्भ लिया गया।

6. आयोग ने स्पष्ट निर्देश दिए थे कि मूल्यांकनकर्ताओं को उम्मीदवारों को पूर्ण अंक देने हैं उन मामलों में जहां: (क) उम्मीदवार ने सही उत्तर के सामने सही का चिह्न लगाया हो और बॉक्स में भी सही उत्तर लिखा हो;

(ख) उम्मीदवार ने केवल सही उत्तर के सामने सही का चिह्न लगाया हो लेकिन बॉक्स में कुछ नहीं लिखा हो; और

(ग) उम्मीदवार ने बॉक्स में सही उत्तर लिखा हो लेकिन सही उत्तर के सामने कोई सही का चिह्न नहीं लगाया हो। किसी भी उम्मीदवार को किसी भी विसंगति, अस्पष्टता या द्वैतता के कारण अंक देने में कोई नुकसान नहीं हुआ। इसके अलावा, चूंकि कोई नकारात्मक अंकन नहीं थी, इस वजह से किसी भी उम्मीदवार को कोई नुकसान नहीं हुआ।

[523 एच, 524 ए से बी]

7. यदि वास्तव में प्रथम दो दिनों में आयोग के विशेषज्ञों ने भाग लिया था तथा दिनांक 17, 18 एवं 19 मार्च को सरकार द्वारा नामित विशेषज्ञ ने भाग लिया था, तब उच्च न्यायालय स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण था, जब उसने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि कथन अस्पष्ट है तथा उसमें यह नहीं बताया गया है कि दिनांक 15 एवं 16 मार्च, 1993 को आयोजित *मौखिक परीक्षा* हेतु विशेषज्ञों की सेवाएं किन परिस्थितियों में अधियाचित नहीं की गई थीं। यह ध्यान देना बहुत महत्वपूर्ण है कि सेवा आयोग द्वारा चयनित विशेषज्ञों की विश्वसनीयता को चुनौती देने का कोई आरोप नहीं है। न ही, रिट याचिकाकर्ताओं ने यह कहा कि आयोग द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों की भागीदारी के कारण चयन प्रभावित हुआ। साक्षात्कार के लिए 50% अंक आवंटित किए गए थे। अतः, चयन की पूरी प्रक्रिया प्रभावित नहीं हुई। [527 डी से एफ]

अंजर अहमद बनाम बिहार राज्य और अन्य, [1994] 1 एस.सी.सी. 150, पर अवलंबन किया गया।

8. इन परीक्षाओं का संचालन केवल अध्यक्ष द्वारा नहीं, बल्कि संपूर्ण आयोग द्वारा किया गया है। [528 ई]

संजय कुमार सिंह बनाम बिहार लोक सेवा आयोग और अन्य, (1993) बीएलजे 328, विशिष्ट।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1994 की दीवानी अपील सं.31-32 आदि आदि ।

पटना उच्च न्यायालय में 1993 की सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 2512 और 2646 दिनांकित 19.7.93 के निर्णय और आदेश से।

उपस्थित पक्षों के लिए: गोपाल सुब्रमण्यम, और एम. एल. वर्मा, विकास सिंह, गोपाल सिंह, राकेश उ. उपाध्याय, डी. बी. वोहरा, संजीव मल्होत्रा, एल. आर. सिंह, राणा मुखर्जी, गुडविल इन्दीवर, यूनूस मलिक, ई. सी. विद्य सागर, सी. बी. बाबू, अनिप सचदेव और बी. बी. सिंह।

न्यायालय का निर्णय जिनके द्वारा दिया गया था

मोहन, न्यायमूर्ति। बिहार लोक सेवा आयोग (जिसे आगे 'बीपीएससी' कहा जाएगा) ने 15.9.1989 को बिहार राज्य में आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारी के पदों पर 56 रिक्तियों को भरने के लिए विज्ञापन जारी किया। उस विज्ञापन में विशेष रूप से यह प्रावधान किया गया था कि चयन के उद्देश्य के लिए प्रारंभिक छंटनी के लिए प्रारंभिक परीक्षा आयोजित किया जाएगा, जिसके आधार पर अंतिम चयन से पहले उम्मीदवारों की सूची तैयार की जाएगी। 28.8.1991 की एक सुधार सूचना के माध्यम से कहा गया कि आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारी के पदों की रिक्तियां 139 से बढ़ा दी गई हैं। इस प्रकार कुल रिक्तियां 195 हो गईं। 13.9.1992 की एक अन्य शुद्धिपत्र जारी की गई जिसमें यह कहा गया कि साक्षात्कार के लिए जो भी पात्र उम्मीदवार उस तारीख तक पात्र हो गए हैं, वे साक्षात्कार में भाग ले सकते हैं। 24.12.1992 को बीपीएससी द्वारा सभी पात्र उम्मीदवारों को वस्तुनिष्ठ प्रकार के परीक्षा में भाग लेने के लिए पत्र जारी किए गए, ताकि आवेदकों को छांटा जा सके और उम्मीदवारों की संख्या को सीमित किया जा सके।

10.1.1993 को बिहार लोक सेवा आयोग (बीपीएससी) द्वारा प्रारंभिक परीक्षा आयोजित किया गया। इस प्रारंभिक परीक्षा में लगभग 3,000 अभ्यर्थियों ने भाग लिया। प्रारंभिक परीक्षा के परिणाम 24.2.1993 को घोषित किए गए। उक्त प्रारंभिक परीक्षा में 410 अभ्यर्थियों को सफल घोषित किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता भी शामिल थे।

कुछ ऐसे उम्मीदवार जो न्यूनतम अंक प्राप्त करने में असफल रहे और जिन्हें प्रारंभिक परीक्षा में सफल घोषित नहीं किया गया, उन्होंने 12.3.1993 को सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 2512/1993 दायर की। उन्होंने बीपीएससी द्वारा आयोजित प्रारंभिक परीक्षा को कई आधारों पर रद्द करने की मांग की। जिन मुख्य आधारों पर प्रारंभिक परीक्षा को चुनौती दी गई, वे हैं:

1. प्रश्न पत्र लीक हो गए थे और परीक्षा से पहले ही बाजार में बिकने योग्य वस्तु बन गए थे।
2. वस्तुनिष्ठ प्रकार की परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन बीपीएससी के परिसर में ऐसे कर्मचारियों द्वारा किया गया जिन्हें परीक्षा का ज्ञान नहीं था।
3. बीपीएससी के अध्यक्ष ने परीक्षा आयोजित करने में मनमाना कार्य किया।
4. प्रारंभिक परीक्षा में पूछे गए प्रश्न अस्पष्ट थे और उनके एक से अधिक उत्तर हो सकते थे।

10.1.1993 को आयोजित प्रारंभिक परीक्षा के पश्चात, सफल उम्मीदवारों को 15.3.1993 से 19.3.1993 तक बैचों में मौखिक परीक्षा के लिए बुलाया गया, जो कि बीपीएससी द्वारा गठित चार समितियों के समक्ष आयोजित किए गए। सभी साक्षात्कार समितियों में, बीपीएससी के दो सदस्य और एक विशेषज्ञ जो या तो बीपीएससी या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था, समिति का गठन करते थे।

कुछ और उम्मीदवार, जो प्रारंभिक परीक्षा में असफल हुए थे, उन्होंने सी.डब्ल्यू.जे.सी. सं. 2646/1993 दिनांक 19.3.1993 को वही आधार देते हुए प्रारंभिक परीक्षा को अभिखंडित करने के लिए याचिका दायर की, जो आधार सी.डब्ल्यू.जे.सी. सं. 2512/1993 में प्रस्तुत किए गए थे। अपीलकर्ताओं ने इन दोनों याचिकाओं में हस्तक्षेप याचिकाएँ दायर कीं। उच्च न्यायालय ने उन्हें अनुमति दी और हस्तक्षेपकर्ताओं के अधिवक्ताओं की दलीलों को सुना। एक सामान्य निर्णय दिनांक 19.7.1993 द्वारा, दोनों रिट याचिकाएँ स्वीकार कर ली गईं। प्रारंभिक परीक्षा दिनांक 10.1.1993 को मुख्य रूप से निम्नलिखित कारणों से अपास्त किया गया:

1. सभी मौखिक परीक्षा तिथियों पर बीपीएससी द्वारा मौखिक परीक्षा में विशेषज्ञों को शामिल नहीं किया गया;
2. प्रारंभिक परीक्षा में पूछे गए प्रश्नों के एक से अधिक संभावित उत्तर थे; और
3. बीपीएससी ने *मौखिक परीक्षा* के लिए 50 प्रतिशत अंक तय किए थे, जो इस न्यायालय के निर्णयों के विपरीत थे।

इस प्रकार अपास्त करने के बाद, उच्च न्यायालय ने बीपीएससी को निर्देश दिया कि वे पद के लिए पुनः विज्ञापन जारी करें और चयन प्रक्रिया पूरी करें। इसके विरोध में, अपीलकर्ताओं ने यह दीवानी अपीलें दायर की हैं।

दीवानी अपील संख्या 31/1994 और दीवानी अपील संख्या 32/1994 क्रमशः पटना उच्च न्यायालय के 19.7.1993 के निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर की गई हैं, जो सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 2512/1993 और 2646/1993 में पारित हुए थे।

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री गोपाल सुब्रमण्यम का कहना है कि उच्च न्यायालय ने पूरी तरह से स्वयं को भ्रमित किया और गलत निष्कर्ष निकाले। यह आरोप कि उत्तर पुस्तिकाएं स्वतंत्र रूप से उपलब्ध थीं, पहली रिट याचिका दायर होने पर 12.3.1993 को नहीं लगाया गया था। कथित प्रश्न और उत्तर पत्रक बीपीएससी द्वारा प्रस्तुत किए गए थे। इसके बाद ही याचिकाकर्ताओं ने इन्हें न्यायालय के समक्ष रखा। यदि वास्तव में इस संबंध में 11.1.1993 को कोई प्रस्तुति दी गई थी, तो बीपीएससी का कहना है कि परीक्षा कार्यालय को ऐसी कोई प्रस्तुति प्राप्त नहीं हुई। यह आश्चर्यजनक है कि इतनी महत्वपूर्ण प्रस्तुति प्रमाण पत्र द्वारा भेजी गई न कि पंजीकृत डाक के माध्यम से। अन्यथा, बीपीएससी कार्यालय में एक पूछताछ काउंटर भी है। यदि वास्तव में ऐसी प्रस्तुति दाखिल करनी थी, तो इसे काउंटर पर जमा कराना और मुद्रित रसीद प्राप्त करना सबसे आसान तरीका होता। ऐसा कुछ नहीं किया गया। प्रश्नपत्र के लीक होने के संबंध में प्रेस प्रतिवेदन परीक्षा के कई महीने बाद आई और ऐसी प्रतिवेदन को कोई विश्वसनीयता नहीं दी जा सकती। इसलिए, इस पहलू पर उच्च न्यायालय का निष्कर्ष स्पष्ट रूप से गलत है।

भ्रष्टाचार के आरोप के संबंध में यह कुछ आश्चर्यजनक है कि प्रत्युत्तर-शपथपत्र इस पहलू पर पूर्णतः मौन है। उच्च न्यायालय ने प्रत्युत्तर में उल्लिखित अनुलग्नक 12 को संदर्भित करने की गलती की थी।

एफ विशेषज्ञ भागीदारी के संबंध में स्थिति इस प्रकार है:

26.2.1993 को बीपीएससी के अध्यक्ष द्वारा साक्षात्कार के लिए 8 विशेषज्ञों के नामांकन का अनुरोध किया गया। सरकार ने 12.3.1993 को विशेषज्ञों के नामांकित होने की सूचना दी। चूंकि साक्षात्कार 15.3.1993 से प्रारंभ होने थे, बीपीएससी ने अपनी व्यवस्था कर ली थी। हालांकि, बीपीएससी ने उत्तर दिया कि जब भी आवश्यक होगा, सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों को सूचित किया जाएगा। उच्च न्यायालय ने पूरी तरह गलत निष्कर्ष निकाला कि सभी पांच दिनों में कोई विशेषज्ञ उपस्थित नहीं थे, जबकि यह तथ्य अनदेखा किया कि 15 से 19 मार्च, 1993 तक प्रत्येक साक्षात्कार तिथि पर बीपीएससी द्वारा नामांकित विशेषज्ञ उपस्थित थे। अंतिम दो दिनों में सरकार द्वारा नामांकित दो विशेषज्ञ भी उपस्थित थे। यह ध्यान देने योग्य है कि बीपीएससी द्वारा नामांकित विशेषज्ञों की विश्वसनीयता पर कोई आरोप नहीं है। अतः उच्च न्यायालय का निष्कर्ष कि यह अत्यंत असुविधाजनक है कि बीपीएससी ने स्वयं ऐसे निर्णय लिए जो तर्कसंगतता या निष्पक्षता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, गलत है। बीपीएससी ने इसे अपनी जवाबी हलफनामा में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया। इस प्रकार, उच्च न्यायालय का निष्कर्ष असमर्थनीय है।

उच्च न्यायालय ने यह माना कि प्रारंभिक परीक्षा में कम से कम 24 प्रतिशत प्रश्न भ्रमित करने वाले और विवादास्पद हैं और ऐसे बहुविकल्पीय प्रश्नों के मानकों के अनुरूप नहीं हैं। यह कथन याचिकाकर्ताओं द्वारा किया गया और उच्च न्यायालय ने इसे स्वीकार कर लिया। यदि उच्च न्यायालय ने इस मामले को विशेषज्ञ समिति के पास भेजा होता और यदि विशेषज्ञ समिति ने ऐसा मत दिया होता, तो कम से कम कुछ कहा जा सकता था। उच्च न्यायालय के पास यह निष्कर्ष निकालने का अधिकार नहीं है कि कोई प्रश्न दो उत्तरों के लिए

सक्षम है। इसके अलावा, न तो कोई नकारात्मक अंकन था और न ही वर्तमान उत्तरदाताओं का यह मामला है कि उन्होंने तथाकथित भ्रमित करने वाले प्रश्नों का उत्तर किसी एक तरीके से दिया और उन्हें अंक नहीं दिए गए। कोई भी अपीलकर्ता इस प्रकार का प्रयास नहीं कर सका सिवाय इसके कि यह अस्पष्ट आरोप लगाया कि प्रश्न भ्रमित करने वाले थे और उनके दो उत्तर हो सकते हैं। ऐसे आरोप को सीधे तौर पर स्वीकार नहीं किया जा सकता।

बीपीएससी पर यह दोष लगाया गया कि उन्होंने *मौखिक परीक्षा* के लिए 100 प्रतिशत अंक निर्धारित किए। इस संदर्भ में, इस न्यायालय ने *अबीद अशगर बनाम बिहार राज्य और अन्य*, [1994] 1 एससीसी 151 में यह अभिनिर्धारित किया कि *मौखिक परीक्षा* के लिए 50 प्रतिशत अंक और शैक्षणिक प्रदर्शन के लिए 50 प्रतिशत अंक मानदंड होना चाहिए। इस निर्णय के अनुसार, उच्च न्यायालय का विपरीत निष्कर्ष विधि के दृष्टिकोण से गलत है।

उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन बीपीएससी के कर्मचारियों द्वारा नहीं किया जाना चाहिए; उत्तर पुस्तिकाओं को बाहरी मूल्यांकन के लिए भेजा जाना चाहिए था। *शांतनु सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य*, एआईआर (1993) इलाहाबाद पृष्ठ 85 पर आधारित यह तर्क वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता। यह ध्यान में रखते हुए कि यह एक वस्तुनिष्ठ प्रकार का प्रश्नपत्र था, जब तक मूल्यांकन के प्रभारी कर्मचारियों को सही उत्तर प्रदान किए गए थे, तब तक बीपीएससी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। आवश्यक कार्य केवल उत्तर को सही उत्तर से मिलान करना था। इस मूल्यांकन में कोई दोष नहीं है। इसलिए, उच्च न्यायालय का निर्णय पूरी तरह असमर्थनीय है और इसे अपास्त किया जाना आवश्यक है।

श्री एम. एल. वर्मा, विद्वान अधिवक्ता, जो उत्तरदाता पक्ष (उच्च न्यायालय में याचिकाकर्ता) का पक्ष प्रस्तुत कर रहे थे, का यह तर्क है कि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्रश्न भ्रमित करने वाले थे। कई प्रश्नों के दो उत्तर संभव थे। ऐसी स्थिति में, जहां उत्तरदाताओं को हानि हुई हो, उनके लिए शिकायत करना खुला है। इस मामले में, 50 प्रश्नों में से कम से कम 12 प्रश्न, अर्थात् 24 प्रतिशत, भ्रमित करने वाले और विवादास्पद थे और इस प्रकार के बहुविकल्पीय प्रश्नों के मानकों का पालन नहीं करते थे। इस आरोप को उच्च

न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया है। इस न्यायालय ने भी *कानपुर विश्वविद्यालय और अन्य बनाम समीर गुप्ता और अन्य*, एआईआर (1983) एससी 1230 में इस प्रकार के प्रश्नों की आलोचना की थी। सही रूप से, उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णय का पालन किया। जैसा कि उच्च न्यायालय ने बताया, भले ही उम्मीदवारों की उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन कंप्यूटर-आधारित न हो, बीपीएससी की ओर से यह जानने का कोई प्रयास नहीं किया गया कि क्या उत्तर कुंजी में कोई विसंगति थी; न ही इस संबंध में कोई विशेषज्ञ समिति गठित की गई।

संलग्नक शपथपत्र का हिस्सा थे। अतः, जैसा कि उच्च न्यायालय ने सही रूप से निष्कर्ष निकाला, संलग्नक V और IX को बीपीएससी द्वारा खंडित नहीं किया गया।

विशेषज्ञों की नियुक्ति के संबंध में, बीपीएससी यह स्पष्ट नहीं कर सका कि जब उसे 12 मार्च, 1983 को सरकार से सूचना प्राप्त हुई थी, तब सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों को भाग लेने की अनुमति क्यों नहीं दी गई और उन्हें जाने के लिए क्यों कहा गया। आखिरकार, मौखिक परीक्षा शुरू होने में अभी भी तीन दिन बाकी थे। यही पक्ष उच्च न्यायालय द्वारा टिप्पणी के लिए सामने आया है। बीपीएससी जैसे संवैधानिक कर्ताधर्ता इस प्रकार का व्यवहार नहीं कर सकते। डॉ. उमा कुमार और अन्य द्वारा दायर याचिका (सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 2512/1993) में विशेष रूप से अनुच्छेद 2 में यह आरोप लगाया गया था:

"क्या उक्त परीक्षा 10.1.93 को आयोजित की जा सकती थी, भले ही प्रश्न पत्र पहले ही बाहर आ गए थे और परीक्षा से पहले एक बाजारू वस्तु बन गए थे?"

XXX

XXX

XXX

क्या उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच बीपीएससी भवन में ही की जा सकती थी, परीक्षा विभाग के लिपिकीय कर्मचारियों द्वारा जिनके पास परीक्षा के विषय का कोई ज्ञान नहीं था?

कंडिका 16 में इसे इस प्रकार कहा गया था:

"कि याचिकाकर्ताओं ने प्रश्न पत्रों की छाया प्रति, जिसमें सही उत्तर थे, प्राप्त की और उन्हें परीक्षा केंद्रों पर उम्मीदवारों को कीमत के बदले बेच दिया।

प्रश्न पत्र और उत्तर की प्रति संलग्नक-2 के रूप में संलग्न है।”

हालांकि इस याचिका में विशेष आरोप लगाया गया था, इसे बीपीएससी द्वारा प्रस्तुत जवाब में संबोधित नहीं किया गया। यदि वास्तव में, बीपीएससी के अनुसार, उत्तर पुस्तिकाएँ मुहर बंद लिफाफों में थीं, तो उत्तर पुस्तिकाएँ गुप्त रूप से प्राप्त करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अतः जवाब में यह कथन अस्वीकार्य है।

बीपीएससी द्वारा लिपिकीय कर्मचारियों द्वारा मूल्यांकन कराने के निर्देश देने के लिए दी गई व्याख्या अजीब है। भले ही यह उद्देश्यपूर्ण प्रकार की परीक्षा थी, यदि मूल्यांकन करने वाले को आयुर्वेद का कोई ज्ञान नहीं था, तो ऐसा मूल्यांकन कानूनी रूप से अमान्य और हास्यास्पद माना जाएगा। उच्च न्यायालय ने इन तथ्यात्मक पहलुओं का गहराई से विश्लेषण किया और उचित निष्कर्ष पर पहुँचा। अतः इस मामले में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप आवश्यक नहीं हो सकता।

दीवानी अपील संख्या 32/94 में, उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित, श्री राकेश उपाध्याय ने कहा कि अध्यक्ष ने स्वयं आयोग को परीक्षा संचालन के लिए निर्देश दिया था। अतः ये परीक्षा अमान्य हैं। इस तर्क के समर्थन में *संजय कुमार बनाम बिहार लोक सेवा आयोग*, 1993 (1) बी.एल.जे. 328 का हवाला दिया गया।

अब हम इन दलीलों की सटीकता की समीक्षा करेंगे।

एक लोकतांत्रिक प्रणाली तभी अच्छी तरह से संचालित की जा सकती है जब लोक सेवकों की नियुक्ति केवल योग्यता के आधार पर और खुली प्रतियोगिता के माध्यम से की जाए। यह भी आवश्यक है कि वे प्रशासन को स्वतंत्र रूप से संचालित करें, बजाय इसके कि वे राजनीतिक वरिष्ठों के आदेशों का अंधाधुंध पालन करें। योग्यता के आधार पर भर्ती के लिए, संविधान ने संघ और राज्यों के स्तर पर लोक सेवा आयोग स्थापित किया है। इन्हें स्वायत्त बनाया गया है ताकि ये कार्य स्वतंत्र, निष्पक्ष और न्यायपूर्ण ढंग से किए जा सकें। लोक सेवा आयोग की महत्वता और इसकी अपेक्षित भूमिका को इस न्यायालय ने *अशोक कुमार यादव व अन्य बनाम हरियाणा राज्य व अन्य*, [1985] 4 एससीसी 417, पृ. 456 में निम्नलिखित शब्दों में दर्शाया है:

"..... लोक सेवा आयोग राज्य में एक केंद्रीय और महत्वपूर्ण स्थान रखता है और इसके प्रशासनिक ढांचे की ईमानदारी और दक्षता काफी हद तक लोक सेवा आयोग द्वारा किए गए चयन की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। यह अत्यंत आवश्यक है कि प्रशासन में सर्वोत्तम और उत्कृष्ट प्रतिभा को शामिल किया जाए और प्रशासनिक सेवाओं में ऐसे व्यक्ति हों जो ईमानदार, सच्चे और स्वतंत्र हों और जो देश में राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित न हों। इसलिए, प्रशासनिक सेवाओं के लिए उम्मीदवारों का चयन पूरी तरह से योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए, यह ध्यान में रखते हुए कि विभिन्न कारक एक मजबूत, कुशल और जन-केंद्रित प्रशासक बनाने में योगदान देते हैं। यह तभी संभव है जब लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य उच्च स्तर की क्षमता, दक्षता और ईमानदारी वाले प्रमुख व्यक्ति हों, जो जनता के मन में चयन की वस्तुनिष्ठता और निष्पक्षता के प्रति विश्वास जगाएं। इसलिए, हम प्रत्येक राज्य सरकार पर जोर देना चाहते हैं कि वे यह सुनिश्चित करें कि उनका लोक सेवा आयोग सक्षम, ईमानदार और स्वतंत्र व्यक्तियों से युक्त हो, जिनकी उत्कृष्ट क्षमता और उच्च प्रतिष्ठा हो, जो जनता का विश्वास अर्जित करें और जो किसी भी बाहरी प्रभाव के कारण अपनी कर्तव्यपरायणता और केवल योग्यता के आधार पर चयन करने की जिम्मेदारी से विचलित न हों।

इसलिए, प्रत्येक सेवा आयोग से अपने कार्यों को निष्पक्ष और निष्पक्ष रूप से संचालित करने की अपेक्षा की जाती है।

बिहार सरकार ने अपनी पत्रांकित पत्र 3.2.1989 के माध्यम से बीपीएससी से आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारी के अस्थायी पदों पर नियुक्ति हेतु सिफारिश करने का अनुरोध किया। आयोग ने उपयुक्त और योग्य उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए, जिसका

विज्ञापन संख्या 24189 बिहार गजट में 20.9.1989 को प्रकाशित किया गया। उक्त आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारी का पद एक राजपत्रित वर्ग- II का पद है और इसका वेतनमान ₹1000-50-1700-ईबी-60-1820 है। पदों की संख्या 56 थी। उम्मीदवारों के पास मान्यता प्राप्त और स्वीकृत महाविद्यालय से आयुर्वेद या समकक्ष डिग्री होना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त, उम्मीदवारों के पास मान्यता प्राप्त संस्था से छह महीने की इंटरनशिप प्रशिक्षण प्रमाणपत्र होना अनिवार्य था, जिसमें इनडोर मरीजों के लिए प्रावधान होने के साथ-साथ आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारी के प्रशिक्षण की सुविधा भी हो। 1.8.1989 की स्थिति में उम्मीदवारों की अधिकतम आयु 35 वर्ष निर्धारित की गई थी। हालांकि, राज्य सरकार के कर्मचारियों के लिए अधिकतम आयु 40 वर्ष थी और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को अधिकतम 5 वर्ष की आयु सीमा में छूट का लाभ प्राप्त था। आवेदन प्रस्तुत करने की अंतिम तिथि 15 नवम्बर, 1989 थी। विज्ञापन में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि उक्त योग्यताएँ न्यूनतम योग्यताएँ हैं और जो उम्मीदवार न्यूनतम योग्यताओं के पात्र नहीं हैं, उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाए जाने का कोई अधिकार नहीं होगा। यदि बड़ी संख्या में आवेदन प्राप्त होते हैं, तो आयोग के लिए प्रारंभिक परीक्षा आयोजित करना खुला रहेगा।

इस बीच, आयोग को बिहार सरकार द्वारा सूचित किया गया कि स्वास्थ्य विभाग ने आयु सीमा को 1.8.1989 की बजाय 1.8.1988 तय करने का निर्णय लिया है। तदनुसार, 1.8.1988 की स्थिति में अधिकतम आयु सीमा 35 वर्ष निर्धारित की गई। शेष नियम और शर्तें समान ही रहनी थीं। उपरोक्त विकास के दृष्टिगत, आयोग ने 7.3.1990 को एक शुद्धिपत्र सूचना जारी की और उम्मीदवारों को इसके बारे में सूचित किया। अन्य नियम और शर्तें वही रहनी थीं। हालांकि, इस परिवर्तन के कारण आवेदन प्रस्तुत करने की अंतिम तिथि को 28.3.1990 तक बढ़ा दिया गया।

आयोग को बिहार सरकार से एक और पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें सरकार ने आयोग को सूचित किया कि उसने आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारियों के 139 और पद सृजित किए हैं, जिसके परिणामस्वरूप रिक्तियों की संख्या अब 195 हो गई। तदनुसार, आयोग ने 24.8.1991 को पुनः एक शुद्धिपत्र सूचना जारी की और उपरोक्त तथ्य आम जनता के ध्यान में लाए। बढ़ी हुई रिक्तियों के मद्देनजर, आवेदन प्रस्तुत करने की अंतिम तिथि को 7.10.1991 तक बढ़ा दिया गया। शेष नियम और शर्तें समान ही बनी रहीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि यूनानी चिकित्सा पदाधिकारी की नियुक्ति के मामले में पटना उच्च न्यायालय ने एक रिट याचिका (सी.डब्ल्यू.जे.सी. सं. 2672/1992) में सरकार और आयोग को यह निर्देश दिया था कि जिन सभी अभ्यर्थियों के पास मौखिक परीक्षा के समय तक आवश्यक योग्यता हो, उन्हें मौखिक परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति दी जाए। इस निर्णय के आलोक में सरकार और आयोग ने यह निर्णय लिया कि वे सभी अभ्यर्थी, जो मौखिक परीक्षा की तिथि तक इंटरनशिप की अवधि पूर्ण कर चुके हों और अपना इंटरनशिप प्रशिक्षण प्रमाण-पत्र तथा पंजीकरण प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करने की स्थिति में हों, उन्हें मौखिक परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति दी जाएगी, भले ही आवेदन प्रस्तुत करने की तिथि तक उन्होंने इंटरनशिप पूर्ण न की हो। अतः आयोग ने 9.9.1992 को पुनः एक और शुद्धिपत्र सूचना जारी कर अभ्यर्थियों को सूचित किया कि वे सभी अभ्यर्थी, जो साक्षात्कार के समय इंटरनशिप प्रशिक्षण प्रमाण-पत्र और पंजीकरण प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करने की स्थिति में हों, मौखिक परीक्षा में सम्मिलित होने के पात्र होंगे। तदनुसार, आवेदन प्रस्तुत करने की अंतिम तिथि 30 सितंबर, 1992 तक बढ़ा दी गई।

अधिक संख्या में आवेदन प्राप्त होने के कारण आयोग ने 10.1.1993 को सात केंद्रों पर आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारी (वस्तुनिष्ठ प्रकार की प्रारंभिक परीक्षा) आयोजित की। अभ्यर्थियों को केवल सही उत्तर के समक्ष सही का चिह्न (✓) अंकित करना अपेक्षित था। प्रारंभिक परीक्षा का परिणाम 24.2.1993 को प्रकाशित किया गया। सी.डब्ल्यू.जे.सी. सं.

2512/1993 दिनांक 12.3.1993 को दायर की गई। मौखिक मौखिक परीक्षा 15.3.1993 से 19.3.1993 के बीच आयोजित किए गए। परीक्षा के उपरांत, चूँकि प्रश्न पुस्तिका-सह-उत्तर पत्रक साधारण कागज़ पर मुद्रित थे तथा आयोग के पास ऑप्टिकल मार्क्स रीडर की सुविधा उपलब्ध नहीं थी, जो वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं की कंप्यूटरीकृत उत्तर-पत्रिकाओं का मूल्यांकन कर सके, इसलिए *आयोग की पूर्ण बैठक में दिनांक 15.1.1993* को यह निर्णय लिया गया कि उत्तर-पत्रिकाओं का मूल्यांकन आयोग के कार्यालय में ही प्रश्न-निर्माताओं द्वारा उपलब्ध कराई गई सही उत्तरों की कुंजी के आधार पर किया जाएगा। प्रश्न-निर्माता बिहार राज्य के बाहर से चुने गए थे। यह मूल्यांकन वरिष्ठतम सहायक द्वारा, विशेष कार्याधिकारी (परीक्षा प्रभारी) की प्रत्यक्ष निगरानी में तथा आयोग के सदस्यों की देख-रेख में किया गया। चूँकि परीक्षा वस्तुनिष्ठ प्रकार की थी तथा सही उत्तर प्रश्नपत्र-निर्माता द्वारा उपलब्ध कराए गए थे, इसलिए परीक्षण कर्मियों को केवल स्टेंसिल के संदर्भ में सही उत्तरों का मिलान कर तदनुसार अंक प्रदान करना अपेक्षित था। इस कार्य के लिए उन्हें संबंधित विषय का ज्ञान होना आवश्यक नहीं था। अतः *आयोग* ने प्रश्न-निर्माताओं द्वारा प्रदत्त सही उत्तरों की कुंजी की सहायता से उत्तर-पत्रिकाओं का हस्तचालित मूल्यांकन करने का *निर्णय लिया*। तदनुसार, विशेष कार्याधिकारी-सह-उप सचिव (परीक्षा प्रभारी) ने गोपनीय शाखा की सहायता से तथा *आयोग के सदस्यों की प्रत्यक्ष निगरानी में*, प्रश्न-निर्माताओं द्वारा प्रदान की गई कुंजी के अनुसार अंकों की गणना कराई। अंकों की गणना की पुनः जाँच विशेष कार्याधिकारी-सह-उप सचिव (परीक्षा प्रभारी) तथा आयोग के सदस्यों द्वारा यादृच्छिक जाँच के आधार पर की गई। इसके पश्चात् गणना किए गए अंकों को कंप्यूटर में प्रविष्ट किया गया और अंतिम परिणाम प्राप्त किया गया। इस प्रकार, संपूर्ण प्रक्रिया में किसी प्रकार का व्यक्तिनिष्ठ मूल्यांकन या तत्व सम्मिलित नहीं था। प्रारंभिक परीक्षा का इस प्रकार तैयार किया गया परिणाम 24.2.1993 को प्रकाशित किया गया। चिकित्सा पदाधिकारी (आयुर्वेद) के पद पर की गई विवादित चयन

प्रक्रिया को अपास्त करने में उच्च न्यायालय के समक्ष जिन कारकों का महत्व रहा, वे निम्नलिखित हैं :

1. व्यापक भ्रष्टाचार के कारण प्रश्न-पत्र परीक्षा से पहले ही लीक हो गए थे और वे एक बिक्री योग्य वस्तु बन गए थे। वास्तव में, इन प्रश्नों के उत्तर भी खुलेआम उपलब्ध थे।
2. सेवा आयोग ने उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन विभिन्न राज्यों के विशेषज्ञों से कराने की प्रचलित परंपरा के विपरीत, अपने ही कर्मचारियों से कराया।
3. कई विवादास्पद प्रश्न पूछे गए थे तथा कुछ प्रश्नों के संबंध में एक से अधिक उत्तर संभव थे।
4. चयन के लिए निर्धारित मानकों का गंभीर उल्लंघन किया गया, क्योंकि आयोग ने मौखिक परीक्षा के दौरान राज्य द्वारा नामित विशेषज्ञों की सेवाओं का केवल दो दिनों तक ही उपयोग किया।
5. मौखिक परीक्षा के लिए 50 अंक निर्धारित किए गए थे। अतः संपूर्ण चयन प्रक्रिया दूषित हो गई।

अब हम यह परीक्षण करेंगे कि क्या ये आधार उन अभ्यर्थियों द्वारा स्थापित किए गए थे जिन्होंने वस्तुनिष्ठ परीक्षा के साथ-साथ *मौखिक परीक्षा* में भी भाग लिया और फिर भी चयन के लिए अर्हता प्राप्त नहीं कर सके।

1. *व्यापक भ्रष्टाचार के कारण प्रश्न-पत्र परीक्षा से पहले ही लीक हो गए थे और वे एक बिक्री योग्य वस्तु बन गए थे। वास्तव में, इन प्रश्नों के उत्तर भी खुलेआम उपलब्ध थे।* आक्षेपित निर्णय के कंडिका 15 में उच्च न्यायालय ने कहा है :
 "जहाँ तक परीक्षा आयोजित करने में व्यापक भ्रष्टाचार के आरोप का संबंध है, स्वयं याचिकाकर्ता भी सही उत्तरों सहित प्रश्न-पत्रों की छाया प्रति प्राप्त करने में सफल रहे; जिनमें से एक रिट याचिका के परिशिष्ट-5 में संलग्न है तथा दूसरा सीडब्ल्यूजेसी संख्या 2512/1993 में याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र के प्रत्युत्तर के परिशिष्ट-12 में संलग्न है।"

अनुलग्नक-12 का उल्लेख किया गया है। सेवा आयोग ने अपने जवाबी हलफनामे में कहा था कि 10.1.1993 को आयोजित परीक्षा के प्रश्न-पत्र परीक्षा प्रारंभ होने से पूर्व लीक नहीं हुए थे। प्रश्न-पत्र मुहर बंदबंद पैकेटों में क्षेत्रीय अधिकारियों को सौंपे गए थे, ताकि उन्हें विभिन्न परीक्षा केंद्रों के पर्यवेक्षकों को वितरित किया जा सके। किसी भी परीक्षा केंद्र के किसी भी पर्यवेक्षक द्वारा प्रश्न-पत्रों के मुहर बंदबंद पैकेटों से छेड़छाड़ की कोई सूचना नहीं दी गई थी।

यह आरोप कि उत्तर पुस्तिकाएँ खुलेआम उपलब्ध थीं उस समय नहीं लगाया गया था जब पहली सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 2512/93 दिनांक 12.3.1993 को दायर की गई थी। याचिकाकर्ताओं का कहना है कि प्रश्न-पत्रों के लीक होने के संबंध में 11.1.1993 को प्रमाण-पत्र डाक के अंतर्गत एक प्रतिवेदन भेजी गई थी। आयोग का स्पष्ट रुख यह है कि ऐसी कोई प्रतिवेदन कभी भेजी ही नहीं गई। यदि ऐसी प्रतिवेदन भेजी गई होती, तो वह सेवा आयोग के कार्यालय में अवश्य प्राप्त होती। ऐसी कोई प्रतिवेदन कभी प्राप्त नहीं हुई। इस प्रकार का अभ्यावेदन भेजने की सामान्य प्रक्रिया सेवा आयोग द्वारा दायर प्रत्युत्तर हलफनामे में इस प्रकार दर्शाई गई है :

“... बिहार लोक सेवा आयोग के कार्यालय में एक पूछताछ काउंटर है। कोई भी व्यक्ति इस काउंटर पर कोई भी पत्र/दस्तावेज जमा कर सकता है और उसकी मुद्रित रसीद प्राप्त कर सकता है। जैसा कि पहले ही कहा गया है, आयोग के कार्यालय में इस प्रकार का कोई भी अभ्यावेदन प्राप्त नहीं हुआ ...”

हमें यह समझ में नहीं आता कि याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवेदन [यदि वास्तव में भेजी भी गई हो] प्रमाण-पत्र डाक के माध्यम से क्यों भेजी। जैसा कि श्री गोपाल सुब्रमणियम ने सही रूप से इंगित किया है, यदि वास्तव में ऐसा कोई अभ्यावेदन किया गया होता, तो उसे सेवा आयोग के काउंटर पर जमा करना और उसके जमा किए जाने के प्रमाण के रूप में मुद्रित रसीद प्राप्त करना सबसे आसान होता। उच्च न्यायालय ने अनुलग्नक-12 का उल्लेख

किया है, जो केवल सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 2512/93 में दायर प्रत्युत्तर में उल्लेखित है। अतः उसका कोई साक्ष्यात्मक मूल्य नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय तक उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन पूरा हो चुका था। शॉर्ट-लिस्टिंग से संबंधित परिणाम 24.2.1993 को प्रकाशित कर दिए गए थे। रिट याचिकाएँ 12.3.1993 को दायर की गईं। अतः परिणामों के प्रकाशन के बाद उत्तर पुस्तिकाओं का प्रस्तुत किया जाना किसी भी प्रकार का साक्ष्यात्मक महत्व नहीं रखता। यही स्थिति दिनांक 15.3.1993 की प्रेस प्रतिवेदन के संबंध में भी है। हमें खेद है कि उच्च न्यायालय ने इन पहलुओं पर समुचित रूप से विचार नहीं किया।

2. सेवा आयोग द्वारा उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन सेवा आयोग के कर्मचारियों से कराया गया, जो कि विभिन्न राज्यों के विशेषज्ञों से मूल्यांकन कराने की प्रचलित पद्धति के विपरीत था: आयोग का पक्ष यह है कि प्रारंभिक परीक्षा वस्तुनिष्ठ प्रकार की थी और मूल्यांकन करने वाले कर्मचारियों को केवल प्रश्नपत्र निर्माताओं द्वारा उपलब्ध कराए गए उत्तर-कुंजी के आधार पर अंक देने थे। मूल्यांकन कर्मचारियों को विषय का ज्ञान होना आवश्यक नहीं था, क्योंकि उन्हें केवल प्रश्नपत्र निर्माताओं द्वारा प्रदान की गई मानक उत्तर-पत्रक के संदर्भ में उत्तरों का मिलान कर मूल्यांकन करना था। इस प्रकार, मूल्यांकन कर्मचारियों के पास विषय का ज्ञान न होने से अभ्यर्थियों के मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

यदि वास्तव में मूल्यांकन के प्रभारी व्यक्तियों को उत्तर-कुंजी उपलब्ध करा दी गई थी, तो उत्तर पुस्तिकाओं को बाहरी मूल्यांकन के लिए भेजने की आवश्यकता ही क्या थी? यह भी ध्यान देने योग्य है कि किसी भी अभ्यर्थी को कोई नुकसान नहीं हुआ, क्योंकि नकारात्मक अंकन की कोई व्यवस्था नहीं थी।

इसके अतिरिक्त, पूर्ण आयोग ने 15.1.93 की अपनी प्रस्तावना द्वारा उपर्युक्त शर्तों के अनुसार उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन के संबंध में निर्णय लिया था, क्योंकि यह एक वस्तुनिष्ठ परीक्षा थी। आयोग के अनुसार, ऐसी परीक्षाओं में जहाँ संभव हो, उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन ऑप्टिकल मार्क्स रीडर कंप्यूटर द्वारा किया जाता है और ऑप्टिकल मार्क्स

रीडर कंप्यूटर, जो वस्तुनिष्ठ प्रकार की उत्तर पुस्तिकाओं का परीक्षण करता है, को विषय का कोई ज्ञान नहीं होता। उसमें उत्तर-कुंजी में दिए गए सही उत्तर प्रविष्ट कर दिए जाते हैं और वह उसी के अनुसार उत्तर पुस्तिकाओं का परीक्षण करता है। वर्तमान मामले में, चूँकि ऑप्टिकल मार्क्स रीडर कंप्यूटर उपलब्ध नहीं था, इसलिए आयोग ने प्रश्नपत्र निर्माताओं से प्राप्त सही उत्तरों की कुंजी की सहायता से अपने वरिष्ठतम सहायकों के माध्यम से उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करने का निर्णय लिया, जिसके लिए विषय का ज्ञान आवश्यक नहीं था। अतः, हमारे विचार में, उच्च न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालना कि मूल्यांकन प्रक्रिया दूषित थी, उचित नहीं है।

3. कई विवादास्पद प्रश्न पूछे गए थे और कुछ प्रश्नों के संबंध में एक से अधिक उत्तर संभव थे। वस्तुनिष्ठ प्रकार की परीक्षा में एक से अधिक उत्तर विकल्प दिए जाते हैं। अभ्यर्थियों को उन अनेक उत्तरों में से सबसे उपयुक्त उत्तर पर सही का चिह्न करना होता है। प्रश्न तथा उनके उत्तर क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा मानक पुस्तकों के संदर्भ में निर्धारित किए गए थे। अतः यह कहना सही नहीं है कि किसी प्रश्न का एक से अधिक सही उत्तर हो सकता है। यदि किसी प्रश्न के एक से अधिक उत्तर संभव भी हों, तो भी अभ्यर्थी को वैकल्पिक उत्तरों में से अधिक उपयुक्त उत्तर का चयन करना होता है। किसी भी स्थिति में, यह कठिनाई सभी अभ्यर्थियों द्वारा समान रूप से अनुभव की गई थी।

श्री कमला कांत त्रिपाठी ने अपने प्रत्युत्तर शपथ-पत्र में केवल दो प्रश्नों का ही उल्लेख किया है। उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि 24 प्रतिशत प्रश्न भ्रमित करने वाले तथा विवादास्पद थे और वे बहुविकल्पीय प्रश्नों के मानकों का पालन नहीं करते थे।

श्री एम.एल. वर्मा, विद्वान अधिवक्ता ने कानपुर विश्वविद्यालय एवं अन्य बनाम समीर गुप्ता एवं अन्य, [1984] 1 एस.सी.आर. 73 पर भरोसा करते हुए यह दलील दिया कि इस पहलू पर उच्च न्यायालय का निष्कर्ष पूर्णतः उचित है।

हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। सामान्यतः कहा जाए तो उच्च न्यायालय को एक विशेषज्ञ संस्था नियुक्त करनी चाहिए थी और प्रश्नों की भ्रमित करने वाली या विवादास्पद प्रकृति के संबंध में उसकी राय प्राप्त करनी चाहिए थी। किसी कारणवश, ऐसा नहीं किया गया। उच्च न्यायालय ने केवल अपने सामने प्रस्तुत रिट याचिकाकर्ताओं के विवरण को स्वीकार करना चुना। इस कारण से कि इस न्यायालय ने बार-बार यह रेखांकित किया है कि ऐसे मामलों को विशेषज्ञ संस्था के पास भेजा जाना चाहिए और उसकी राय प्राप्त की जानी चाहिए, इसका कारण यह है कि इस प्रकार के शैक्षणिक मामलों में, न्यायालय के पास आवश्यक विशेषज्ञता नहीं होती। *कानपुर विश्वविद्यालय* के मामले [उपरोक्त] का उल्लेख करते हुए श्री एम.एल. वर्मा ने जिस पर भरोसा किया, उसमें पृष्ठ 81-82 पर निम्नलिखित टिप्पणियाँ दी गई हैं:

“हम इस बात से सहमत हैं कि उत्तर-कुंजी को तब तक सही माना जाना चाहिए जब तक कि उसे गलत सिद्ध न कर दिया जाए, और उसे केवल तर्कसंगत अनुमान या युक्तिकरण की प्रक्रिया के आधार पर गलत नहीं ठहराया जाना चाहिए। उसे स्पष्ट रूप से गलत सिद्ध किया जाना आवश्यक है, अर्थात् ऐसा होना चाहिए कि उस विषय में पारंगत किसी भी समझदार समूह द्वारा उसे सही न माना जा सके। “इस प्रकरण में विश्वविद्यालय का तर्क बड़ी संख्या में प्रामाणिक पाठ्य-पुस्तकों द्वारा असत्य सिद्ध हो जाता है, जिन्हें उत्तर प्रदेश में छात्र सामान्यतः पढ़ते हैं। ये पाठ्य-पुस्तकें इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं छोड़तीं कि छात्रों द्वारा दिया गया उत्तर सही है और उत्तर-कुंजी में दिया गया उत्तर गलत है।

जो छात्र इंटरमीडिएट समिति परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं, वे उत्तर प्रदेश के चिकित्सक महाविद्यालय में प्रवेश के लिए आयोजित प्रवेश परीक्षा में सम्मिलित होने के पात्र होते हैं। इंटरमीडिएट समिति परीक्षा के लिए कुछ

पुस्तकों को निर्धारित किया गया है और छात्रों को विषयों का जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह इन्हीं पाठ्य-पुस्तकों में निहित सामग्री से प्राप्त होता है। ये पाठ्य-पुस्तकें छात्रों के पक्ष का पूर्णतः समर्थन करती हैं। यदि यह संदेह का मामला होता, तो हम निःसंदेह उत्तर-कुंजी को प्राथमिकता देते। किंतु जब विषय संदेह से परे हो, तब छात्रों को ऐसा उत्तर न देने के लिए दंडित करना अनुचित होगा जो उत्तर-कुंजी के अनुरूप हो, अर्थात् ऐसे उत्तर के लिए जो स्पष्ट रूप से गलत सिद्ध हो चुका है।”

यहाँ स्थिति ऐसी नहीं है।

डॉ. शंतनु सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर (1993) इलाहाबाद 85 के मामले में, पृष्ठ 87 पर निम्नलिखित कहा गया है—

“संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत कार्यवाही में इस न्यायालय के लिए इस विषय में और अधिक जाँच करना संभव नहीं है, और अभिलेख पर उपलब्ध शपथ-पत्रों तथा दस्तावेजों के आधार पर यह स्थापित नहीं हो सका है कि 6 से अधिक प्रश्नों के दो-दो सही उत्तर थे, जिसके परिणामस्वरूप उन अभ्यर्थियों को कोई हानि हुई हो जिन्होंने उक्त प्रश्नों का प्रयास किया था। विश्वविद्यालय ने यह निर्देश दिया है कि विवादित 6 प्रश्नों पर नकारात्मक अंकन नहीं किया जाएगा और इस प्रकार परीक्षा में सम्मिलित हुए छात्रों को कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है। यह उल्लेखनीय है कि विश्वविद्यालय ने परीक्षा समाप्त होने के बाद स्वतः संज्ञान इस पहलू की जाँच की और यह सुनिश्चित करने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति गठित की कि इस कारण छात्रों को कोई नुकसान न हो।”

उपर्युक्त परिस्थितियों में, आयोग द्वारा *स्वतः संज्ञान* विशेषज्ञों की समिति नियुक्त करने का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता।

यह भी ध्यान देने वाली बात है कि आयोग ने मूल्यांकनकर्ताओं को साफ निर्देश दिए थे कि जिन मामलों में (क) उम्मीदवार ने सही जवाब के आगे सही का चिह्न लगाया है और बॉक्स में भी सही जवाब लिखा है; (ख) उम्मीदवार ने सिर्फ सही जवाब के आगे सही का चिह्न लगाया है लेकिन बॉक्स में कुछ नहीं लिखा है; और (ग) उम्मीदवार ने बॉक्स में सही जवाब लिखा है लेकिन सही जवाब के आगे कोई सही का चिह्न नहीं लगाया है, उन सभी मामलों में उम्मीदवारों को पूरे अंक दिए जाएं। किसी भी गड़बड़ी, अस्पष्टता या दोहराव के कारण अंक देने में किसी भी उम्मीदवार को कोई नुकसान नहीं हुआ। इसके अलावा, नकारात्मक अंकन न होने के कारण, इस वजह से किसी भी उम्मीदवार को कोई नुकसान नहीं हुआ।

आखिर में, हम यह भी बता दें कि अनुलंङ्क 2 में सिर्फ 2 सवालों के बारे में शिकायत की गई थी, जबकि अनुलंङ्क 5 में 6 सवालों के बारे में और अनुलंङ्क 6 में दूसरे 6 सवालों को भ्रामक और विवादित बताया गया था। उच्च न्यायालय ने बस इन सबको जोड़ दिया और कहा कि 24% सवाल भ्रामक और विवादित हैं। हम इस मुद्दे पर उच्च न्यायालय के फैसले को मानने की स्थिति में नहीं हैं।

4. *चयन के लिए निर्धारित मानकों का घोर उल्लंघन किया गया, क्योंकि आयोग ने मौखिक परीक्षा के दौरान केवल दो दिनों को छोड़कर राज्य द्वारा नामित विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग नहीं किया।* 26.2.1993 को आयोग ने विशेषज्ञों के नामांकन के लिए सरकार को पत्र लिखा था। सरकार ने उस पत्र का उत्तर 12.3.1993 को निम्नलिखित रूप में दिया:

“बिहार सरकार

स्वास्थ्य, चिकित्सा शिक्षा एवं परिवार कल्याण

विभाग

प्रेषक

श्री भैरव महतो

उप सचिव, सरकार

सेवा में

अध्यक्ष,

बिहार लोक सेवा आयोग,

बेली रोड, पटना।

पटना, दिनांक 12.3.93

विषय: आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिए विशेषज्ञों के नामांकन के संबंध में।

महोदय,

उपरोक्त विषय पर आपके पत्र संख्या 2375 दिनांक 26.2.93 के संदर्भ में, मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिए मौखिक परीक्षा हेतु आठ विशेषज्ञों को नामित करने का अनुरोध किया गया है।

इस संबंध में निम्नलिखित अधिकारियों के नाम चुने गए हैं:

1. डॉ. अनिरुद्ध मिश्रा एम.डी. पीएचडी

सुपरिटेण्डेंट

सरकारी आयुर्वेदिक कॉलेज

और अस्पताल, पटना।

2. डॉ. एन.जी. बंधोपाध्याय एम.डी.,

प्रोफेसर और एच.ओ.डी. पी.एस. विभाग,

पीएचडी

सरकारी आयुर्वेदिक कॉलेज, पटना।

3. डॉ. सुधाकर शर्मा एम.डी.

प्रोफेसर इंचार्ज, प्रिंसिपल, सरकारी

आयुर्वेदिक कॉलेज और

- अस्पताल, दरभंगा।
4. डॉ. बलि राम, एम.डी. प्रोफेसर सरकारी
आयुर्वेदिक कॉलेज, पटना।
5. डॉ. विद्यानंद प्रसाद एम.डी. रीडर, ई.एन.टी. विभाग,
सरकारी आयुर्वेदिक
कॉलेज, पटना
6. डॉ. मालतीलता सिन्हा प्रोफेसर, सरकारी आयुर्वेदिक
कॉलेज, बेगूसराय।
7. डॉ. के.पी. मिश्रा, एम.डी. रीडर, पी.जी. विभाग
आयुर्वेदिक कॉलेज, पटना।
8. डॉ. रामसेवक सिंह एम.डी. लेक्चरर, सरकारी आयुर्वेदिक
कॉलेज, पटना।
- हस्ताक्षर/- भैरव महतो
उप सचिव

ज्ञापन सं.

स्वास्थ्य

पटना

दिनांकित

प्रतिलिपि को अग्रेषित किया गया:-

समस्त संबंधित पदाधिकारियों को सूचनार्थ। उनसे अनुरोध किया जाता है कि वे आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारी के साक्षात्कार हेतु दिनांक 15.03.1993 को प्रातः 9 बजे से पूर्व बी०पी०एस०सी० कार्यालय पहुंचना सुनिश्चित करें।

एस. डी./- भैरव महतो

उप सचिव

बिहार राज्य सरकार"

साक्षात्कार 15.3.1993 से प्रारम्भ होने थे। तब तक आयोग ने अपने स्वयं के विशेषज्ञ नियुक्त कर लिए थे। उच्च न्यायालय में आयोग द्वारा दायर प्रतिवाद में यह कहा गया है—

"... आयोग साक्षात्कार के लिए या तो स्वयं विशेषज्ञ नियुक्त करता है अथवा सरकार से संबंधित विभाग से विशेषज्ञों को प्रतिनियुक्त करने का अनुरोध करता है। इस मामले में आयोग ने स्वयं कुछ विशेषज्ञ नियुक्त किए थे तथा आयोग के अनुरोध पर सरकार द्वारा 8 विशेषज्ञ भी नियुक्त किए गए थे। साक्षात्कार के प्रथम दिन, अर्थात् 15.3.1993 को सभी विशेषज्ञों की सेवाओं की आवश्यकता नहीं थी और तदनुसार उन्हें इसकी सूचना दे दी गई थी। उन्हें यह भी बताया गया था कि बाद की तिथियों में जब उनकी सेवाओं की आवश्यकता होगी तो उन्हें तदनुसार सूचित किया जाएगा और साक्षात्कार में सहायता करने के लिए बुलाया जाएगा।

इसके पश्चात्, अर्थात् 17, 18 और 19 मार्च 1993 को, सरकार द्वारा नियुक्त किए गए 8 विशेषज्ञों में से कुछ को साक्षात्कार में आयोग की सहायता करने के लिए बुलाया गया और तदनुसार सरकार द्वारा नियुक्त दो विशेषज्ञ, अर्थात् डॉ. के. पी. मिश्र और डॉ. बली राम, ने उन दिनों साक्षात्कार में भाग लिया।"

यही रुख इस न्यायालय के समक्ष दायर शपथपत्र में भी दोहराया गया है, जो इस प्रकार है—

"नियमों या निर्देशों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि आयोग अपने स्वयं के विशेषज्ञ नियुक्त नहीं कर सकता। वास्तव में, अतीत के व्यवहार से यह स्पष्ट होता है कि आयोग स्वयं उन विशेषज्ञों को नियुक्त करता रहा है जिन्हें मौखिक

परीक्षा से जोड़ा जाना होता है। इस विशेष मामले में भी, आयोग ने निम्नलिखित विशेषज्ञों को नियुक्त कियाः”

1. डॉ. नागेश द्विवेदी
2. डॉ. जय प्रकाश नारायण सिंह
3. डॉ. अजमत हुसैन अंसारी
4. डॉ. (श्रीमती) विद्यावत पाठक
5. डॉ. देवानंद प्रसाद सिंह और
6. डॉ. अजय कुमार सिंह

सभी उल्लेखित विशेषज्ञ 15 और 16 मार्च 1993 को आयोजित मौखिक परीक्षा समिति में सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त, सरकार ने आयोग को आठ विशेषज्ञों की सूची प्रेषित की थी, जिनमें से डॉ. बालिराम और डॉ. के. पी. मिश्रा 17, 18 और 19 मार्च 1993 को आयोजित साक्षात्कार में सम्मिलित हुए। इस दृष्टि से, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने में त्रुटि की कि यह स्पष्ट नहीं किया गया कि 15 और 16 मार्च 1993 को आयोजित *मौखिक परीक्षा* के लिए विशेषज्ञों की सेवाएँ किन परिस्थितियों में और क्यों नहीं ली गईं। आयोग केवल सरकार द्वारा नामांकित विशेषज्ञों का चयन करने का बाध्य नहीं है।”

यदि वास्तव में, पहले दो दिनों में आयोग द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों ने मौखिक परीक्षा में भाग लिया और 17, 18 और 19 मार्च को सरकार द्वारा नामित विशेषज्ञ डॉ. बालि राम और डॉ. के. पी. मिश्रा ने भाग लिया, तो उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से त्रुटि की जब उसने पाया कि “यह विवरण अस्पष्ट है और यह स्पष्ट नहीं करता कि 15 और 16 मार्च 1993 को आयोजित *मौखिक परीक्षा* के लिए विशेषज्ञों की सेवाएँ किन परिस्थितियों में नहीं ली गईं। यह ध्यान रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि आयोग द्वारा स्वीकार किए गए विशेषज्ञों की

विश्वसनीयता पर कोई आरोप नहीं लगाया गया है। न ही याचिकाकर्ताओं ने यह दावा किया है कि आयोग द्वारा नियुक्त विशेषज्ञों की भागीदारी के कारण चयन प्रक्रिया प्रभावित हुई।

5. साक्षात्कार के लिए 50 अंक निर्धारित किए गए थे, परंतु इससे चयन प्रक्रिया स्वतः अवैध नहीं हो जाती: इस संबंध में इस न्यायालय का हाल का निर्णय *अंजर अहमद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य* (1994) 1 एससीसी 150 में भी पुष्टि होती है। हेडनोट में लिखा है:

“ सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, जो चयन में साक्षात्कार के लिए अंकों के निर्धारण से संबंधित है, मुख्यतः दो श्रेणियों में आता है: (i) शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश के लिए चयन और (ii) सेवा में नियुक्ति के लिए चयन। शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश लेने वाले छात्रों के व्यक्तित्व के गुण पूरी तरह विकसित नहीं होते, इसलिए लिखित परीक्षा को *मौखिक परीक्षा* की तुलना में अधिक महत्व देना आवश्यक है। किन्तु सार्वजनिक सेवा में नियुक्ति के मामले में चयन ऐसे व्यक्तियों में से किया जाना चाहिए जिनका व्यक्तित्व परिपक्व हो। *लीला धर* मामले में किए गए निरीक्षण यह बताते हैं कि *मौखिक परीक्षा* के लिए अंकों का महत्व, लिखित परीक्षा के अंकों के सापेक्ष, केवल तब ही विचार किया जा सकता है जब लिखित परीक्षा और *मौखिक परीक्षा* दोनों चयन के आवश्यक घटक माने जाएँ। साथ ही, *मौखिक परीक्षा* के लिए लिखित परीक्षा की तुलना में ठीक कितने अंक निर्धारित किए जाएँ, इस संबंध में कोई कठोर और निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। अंकों का वितरण सेवा की आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न हो सकता है।

जहाँ चयन केवल *मौखिक परीक्षा* के आधार पर किया जाना है, वहाँ *मौखिक परीक्षा* के लिए अंकों के महत्व का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। अशोक उर्फ सोमन्ना गौड़ा मामले का निर्णय इस अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए कि

लिखित परीक्षा और मौखिक परीक्षा दोनों पर आधारित चयन में अंकों के आवंटन के सिद्धांत उसी प्रकार लागू होंगे जहाँ कोई लिखित परीक्षा आयोजित नहीं की जाती और चयन केवल मौखिक परीक्षा के आधार पर होता है।”

श्री राकेश उपाध्याय, दीवानी अपील सं. 32/94 में उत्तरदाताओं के पक्ष में साक्षी अधिवक्ता, एक अतिरिक्त बिंदु उठाते हैं कि जहां तक अध्यक्ष स्वयं ने आयोग से परामर्श किए बिना परीक्षा का संचालन किया, उस स्थिति में पूरी परीक्षा अवैध हो जाती है। इस दावे के समर्थन में वे संजय कुमार सिंह बनाम बिहार लोक सेवा आयोग एवं अन्य (1993) 1 बीएलजे 328 का संदर्भ देते हैं। सेवा आयोग इस तर्क का विरोध करते हुए प्रस्तुत करता है कि यह तथ्यात्मक रूप से असत्य है। यह पूरी आयोग ही है जिसने ये परीक्षाएँ संचालित की हैं। अतः संजय कुमार सिंह (उपरोक्त) मामले पर निर्भरता गलत और अनुचित है, जैसा कि उसी निर्णय के पृष्ठ 338-340 में स्पष्ट किया गया है। हम पाते हैं कि यह तथ्यात्मक रूप से असत्य है। आयोग ने अपनी हलफनामा में स्पष्ट रूप से कहा है:

“परीक्षा के बाद, चूंकि प्रश्न-पुस्तिका-सह-उत्तर पत्रक सामान्य कागज पर मुद्रित थे और आयोग के पास ऑप्टिकल मार्क्स रीडर की सुविधा नहीं थी, जो वस्तुनिष्ठ परीक्षा के कंप्यूटरीकृत उत्तर पत्रकों की जांच कर सके, इसलिए पूरी आयोग ने अपनी बैठक में दिनांक 15.1.1993 को यह निर्णय लिया कि उत्तर पत्रकों का मूल्यांकन आयोग के कार्यालय में किया जाए। इसका संदर्भ सही उत्तरों की कुंजी से लिया जाएगा, जो कि पेपर सेटर्स द्वारा प्रदान की गई थी। ये पेपर सेटर्स बिहार के बाहर से चयनित किए गए थे। मूल्यांकन वरिष्ठ सहायक द्वारा, अधिकारी-विशेष दायित्वधारी [परीक्षा प्रभारी] की प्रत्यक्ष निगरानी में और आयोग के सदस्यों की देखरेख में किया गया। चूंकि परीक्षा वस्तुनिष्ठ प्रकार की थी और सही उत्तर पेपर सेटर्स द्वारा प्रदान किए गए थे, इसलिए जांच कर्मियों को केवल उत्तर पत्रक की सही उत्तर कुंजी के अनुसार

जाँच करनी थी और उसके अनुसार अंक प्रदान करने थे। इसके लिए उन्हें संबंधित विषय का ज्ञान आवश्यक नहीं था। अतः *आयोग* ने उत्तर पत्रकों का मूल्यांकन सही उत्तर कुंजी की मदद से हाथ से करने का *निर्णय लिया*। अनुसार, अधिकारी-विशेष दायित्वधारी-सह-उप सचिव (परीक्षा प्रभारी) ने गोपनीय अनुभाग की सहायता से और *आयोग के सदस्यों की प्रत्यक्ष निगरानी में*, प्रश्न सेट्स द्वारा प्रदान की गई कुंजी के अनुसार अंक गणना करवाई। अंक की गणना को फिर अधिकारी-विशेष दायित्वधारी-सह-उप सचिव (परीक्षा प्रभारी) और *आयोग के सदस्यों द्वारा* यादृच्छिक जाँच के आधार पर पुनः सत्यापित किया गया। गणना किए गए अंक कंप्यूटर में डाले गए और अंतिम परिणाम प्राप्त किया गया। इस पूरी प्रक्रिया में कोई सापेक्ष मूल्यांकन या व्यक्तिपरक तत्व शामिल नहीं था। इस प्रकार, प्रारंभिक परीक्षा का परिणाम दिनांक 24.2.1993 को प्रकाशित किया गया। [जोर दिया गया]

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि पूरे आयोग ने कार्य किया और केवल अध्यक्ष ने नहीं। अतः *संजय कुमार* मामले (उपरोक्त) का कोई आवेदन नहीं है।

इन सभी कारणों से, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाता है। बिहार लोक सेवा आयोग द्वारा आयुर्वेदिक चिकित्सा पदाधिकारी पद के लिए किए गए चयन को बरकरार रखा जाता है। दीवानी अपीलें इस प्रकार स्वीकार की जाती हैं। 1994 की अं.आ. सं. 3 और 4 इस अनुसार निपटाई जाती हैं। अपीलकर्ता अपने खर्चों के अधिकारी होंगे, जो 5,000 रुपये उत्तरदाताओं [उच्च न्यायालय में याचिकाकर्ता] से वसूल किए जाएंगे।

के. एस. डी

अपीलों की अनुमति दी गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।